''दलित दृष्टि से 'हरिजन गाथा' और 'चमारों की गली' के कथ्य की तुलना''

शिवम सिंह
शोध छात्र, (हिन्दी)
क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद,
महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय,
वर्धा, महाराष्ट्र

दलित का अभिप्राय समाज के उस शोषित दमित एवं उत्पीड़ित वर्ग से है जिसका दलन हुआ, जिसे सदियों से अछूत कहकर उपेक्षित किया गया, सब प्रकार से उसका शोषण किया गया, उसे कोई अधिकार नहीं दिया गया, शिक्षा से वह वंचित रहा और उसकी शक्ति को पनपने नहीं दिया गया। इन्हीं निषेधों को नकारने व ध्वंस करने का कार्य करती है दलित दृष्टि। यह दलित दृष्टि या विमर्श इन वैचारिक आन्दोलनों संश्लेष्य है– लैटिन अमरिकियों, अफ्रीकी एवं एशियाई अश्वेत साहित्यकारों द्वारा प्रारम्भ किये गये, 'हाशिये के लोगों का विमर्श', ने इन लेखकों के लिए न केवल अनकूल सर्जनात्मक परिवेश उपलब्ध कराया, बल्कि ब्लैक पैंथर की स्थापना द्वारा काले लोगों के संघर्ष, आक्रोश तथा व्यथा आदि को वैचारिक जामा पहनाते हुए उपेक्षित, दमित, उत्पीड़ित मनुष्यत्व की मुक्ति और परम्परागत वर्जनाओं, जकड़नों एवं बन्धनों को विश्वभर में शिथिल कर दिया।

भारतीय सन्दर्भ में विशेषकर मराठी, गुजराती और कन्नड़ में दलित आनदोलन का उभार ही हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श का प्रतिफलन है। यह विमर्श डा0 भीमराव अम्बेडकर तथा महात्मा ज्योतिबा फुले के विचारों के आलोक में अंकुरित हुआ, जिसे अनेक रचनाकारों ने अपने अनुभव वेदना और विद्रोह के रसायन से सिंचित किया। दलित विमर्श के साहित्यकारों ने गाँव और शहर के दलित जन साधारण की कराहती आवाज़ को केवल सुना ही नहीं, अपितु संवाद भी किया है, वेदनाओं की किस्मों और जुल्मों के नये रूप को आंखों से देखा है सहा है। झुग्गी–झोपड़ियों की गन्दी बस्ती में रहते लोगों के जिन्दगी के स्पन्दन को महसूस, व्यवस्था और विकास के नाम पर,

ढाक के तीन पात' की स्थिति से जूझते प्रश्नों से साक्षात्कार भी किया है। दलित साहित्य का सर्जनात्मक मूल स्वतन्त्रता समानता व भाईचारे की भावधारा प्रवाहित करना है। उसकी चेतना विरोध की ही नहीं, मैत्री की भी है। मानवतावाद और लोकतांत्रिक मूल्य उसके सर्वोच्च प्रतिमान है। उसमें पीड़ा चीखती ही नहीं बल्कि अन्याय और अत्याचार के खिलाफ मानस को विद्रोही भी बनाती है।

दलित साहित्य के सन्दर्भ में एक प्रश्न लगातार उठता है स्वानुभूति बनाम सहानुभूति। पहले वाले पक्षकारों का तर्क है कि यथार्थ के गर्म तवे को हाथ से तथा चिमटे से पकड़ने में फर्क होता है। दलितों पर लिखने का अधिकारी वही है जिसने उस तपन को सहा है। दूसरी तरफ के पक्षकारों की यह दलील है कि विधवा पर लिखने के लिए विधवा होना जरूरी नहीं। उसकी जीवन स्थितियों, उसके वैधव्य से सजल सहानुभूति रखते हुये अपनी कल्पना शक्ति से उसकी पीड़ा, चिंता व संकट से साधारणीकृत या तद्नुभूति कर सकते हैं। अर्थात एकाकार हो सकते हैं। हिन्दी में बहुत सारा प्रगतिशील और जनवादी साहित्य सहानुभूति/समानुभूति पूर्वक ही लिखा गया है। जिसने थोड़ी मात्रा में ही सही दलित लेखन का मार्ग प्रशस्त किया है। हिन्दी में दलित साहित्य को मुखर करने वालों में एक आलोचक–सम्पादक राजेन्द्र यादव 'हंस' के एक सम्पादकीय 'पीड़ा के दावेदार' में स्वानुभूतिवादियों के लिए यह प्रस्तावित करते हैं– ''वे यह रियायत उन्हें क्यों नहीं देना चाहते कि अपनी साफ–सुथरी दुनिया छोड़कर वे हमारे संसार में, आये, उनका स्वागत है। जितना और जैसा कुछ वे हमारे लिए या हमारी ओर से कर सकते हैं, जरूर करें। हम उनके आभारी हैं कि हमारी यातनाओं की ओर उन्होंने ही पहले–पहल दुनिया का ध्यान आकर्षित किया।... हमारे भीतर वह चेतना जगाई कि हम अपनी स्थितियों को बदलने की बात सोच सकें।''[1] अर्थात हमको सहानुभूति परक साहित्य के प्रति उदार रहना चाहिये अन्यथा उसका निषेध करते–करते एक नये ब्राह्मणवाद को जन्म दे बैठेंगे। आगे वे सहानुभूतिवादियों को हिदायती लहजे में कहते हैं– उन्हें कोई नहीं रोकता कि वे सच्ची–हमदर्दी, मानवीय चिंताओं और सामाजिक अन्यायों का प्रायश्चित करने वाली कचोटती आत्माओं से गहराई में साक्षात्कार न करें मगर ये आग्रह न करें कि वे ही

चिड़ियों की सच्ची बोली बोलते रहे हैं, इसलिए चिड़ियों को खुद अपनी कला और संगीत–विहीन चैं–चैं मचाने की कोई जरूरत नहीं है।''[2]

विवेच्य कविताएं गैर दलितों द्वारा लिखी गई सहानुभूतिपरक कविताएं हैं। इसके बावजूद भी दलितों की यातनादायी जीवन से शेष समाज को रूबरू कराती हैं। पुरी शिद्दत के साथ उनकी पीड़ा संत्रास बेबसी और संघर्ष की गवाही आम–आवाम के समक्ष देती है।

'हरिजन गाथा' 1977 ई0 में बिहार की राजधानी पटना से 40 किमी. दूर बेलछी हत्याकांड से द्रवित होकर लिखी गई है। जहाँ सवर्णों ने दलितों की बस्ती में आग लगा दी थी, तथा 13 दलित इस आग में जिंदा झोंक दिये गये थे। सम्पूर्ण कविता दलितों की घनीभूत पीड़ा, वेदना और प्रतिशोध से भरी हुई है। 'ऐसा तो कभी नहीं हुआ', की टेक के साथ इसे लोमहर्षक अमानवीय कृत्य तथा वर्णव्यवस्था की क्रूरता को भी व्यक्त करती है। इसी बस्ती के एक सद्यः प्रसूत शिशु को नागार्जुन ने अपना काव्य नायक बनाया है। जिसका पिता भी सवर्णों द्वारा किये गये इस सामूहिक दलित नरसंहार में मारा गया है। इसी नवजातक में वह भविष्य की तमाम सम्भावनाएं देखते है। जो आगे चलकर इन हिंसकों से इंतकाम लेगा। उसकी अपनी पार्टी, अपना झंड़ा तथा अपना राज होगा। निर्बलों वंचितों का नायक तथा नये कानून तथा नई संहिताओं का निर्माता भी होगा। ऐसी भविष्यवाणी रैदासी संत गरीबदास उसका माथा व हथेली देखकर करते हैं। कविता में कंस–कृष्ण कथा की अनुगूंज भी प्रतिध्वनित होती है। कृष्ण की भांति यह बालक भी भारी उत्पाती तथा धरती से जुल्म मिटाने वाला होगा। वहाँ से बालक को झरिया–फरिया भेज देने की बात भी रैदासी सन्त करते हैं। पौराणिक नायक कृष्ण से यह बालक इस तरह भिन्न है कि यहाँ नायक अभिजात्य वर्ग से नहीं बल्कि निम्न वर्ग से है तथा दुष्टों का दमन ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तित करने वाला है।

'चमारों की गली' नज़्म उत्तर प्रदेश के तराई सूबे गोंडा जैसे जनपद की सामन्तवादिता को दर्शाती है। कविता शुरू होती है एक ठाकुर युवक द्वारा दलित बलिका 'कृष्णा' के साथ जिसे कवि सरयू पार की मोनालिसा कहता है, दुष्कर्म करने की घटना से। वस्तुतः इस तरह के कुकृत्य उत्तर

भारतीय समाज, खास कर सामंती सवर्ण बहुल इलाकों में आम हो चुका है। जहाँ रोज इस प्रकार की घटनाएं अखबारों में प्रकाशित होती है। इस दुष्कृत्य के विरोध में दलित बस्ती को युवक 'मंगल' थाने जाने के लिये तैयार करता है। किन्तु पुलिस का सामन्ती चरित्र व सवर्णों से गठजोड़ आड़े आ जाता है। और पुलिस उसी दलित चेतना से लेश 'मंगल' को झूठी चोरी के जुल्म में गिरफ्तर कर लेती है। इसके बाद सवर्णों द्वारा उस टोले में आग लगा दी जाती है, विध्वंस का नंगा नाच शुरू हो जाता है। उनके सामने हमारी सारी सवैंधानिक शक्तियां शिथिल पड़ जाती है। लोकतंत्र बेबस नज़र आता है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में ''दलितों के दमन की जो पूरी प्रक्रिया है उसमें जातिगत वर्चस्व के साथ सत्ता का सहयोग किस प्रकार आतंककारी होता है, यह देखना हो तो इस कविता में पढ़िये।''[3]

तुलनात्मक अध्ययन में एक पद्धति है परम्परा प्रभाव ग्रहण विधि। इस दृष्टि से एक रचनाकार अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से कुछ न कुछ प्रभाव ग्रहण करता है। नागार्जुन और अदम भी इससे अछूते नहीं है। नागार्जुन जहां संस्कृति कवियों से प्रेरित होते हैं, वहीं अदम अपने पूर्व के सभी जनवादी रचनाकारों से प्रभाव ग्रहण करते हैं। उनकी ग़ज़लों और नज़्मों में तमाम रचनाकारों के नाम और उनके पात्र आते रहते हैं। कहीं होरी–धनिया, कहीं हिरामन, कहीं रेणु और प्रेमचन्द। नागार्जुन से तो वह इस कदर प्रभावित हुए कि एक पूरी ग़ज़ल ही उन पर लिखा डाली–

''ग्रामगृन्धी सर्जना, उसमें जुलाहे का गुरूर
जितना अनगढ़ उतना ही अभिराम है नागार्जुन
खास इतना है कि सर आँखों पे है उसका वजूद
मुफ्लिसों की झोपड़ी तक आम है नागार्जुन।''[4]

कई कवि अपने को राज्यीय, राष्ट्रीय और वैश्विक कवि कहलाना चाहते हैं। वहीं ये दोनों कवि जनता का कवि कहलाना पसन्द करते है। एक तो अपने जनकवि होने की घोषणा भी करता है– 'जनता मुझसे पूँछ रही है क्या बतालाऊ/जन कवि हूँ साफ कहूँगा क्यों हकलाऊँ। वह उसकी दुःख तकलीफों में साझी होना चाहता है। उसको रोटी कपड़ा और मकान मिलना चाहिये किसी की विचार और विचारधारा की कीमत पर। चाहे दक्षिण, चाहे वाम/जनता को रोटी से काम। दूसरा भी

इसी परम्परा का अवगाहन करता है वह भी राजपथ के बरअक्स गांव की पगडंडिया नापता है। उसके भी विचार केन्द्र में जुल्फ चॉद, आईना, गुलाब नहीं उपेक्षित तिरस्कृत भूखी दूखी जनता ही है– जुल्फ़, अँगड़ाई, तबस्सुम, चॉद, आईना, गुलाब/भूखमरी के मोर्चे पर ढल गया इनका शबाब।

पहली कविता का शीर्षक 'हरिजन गाथा' है। 'हरिजन' जो गांधी जी द्वारा दलितों, अछूतों के लिए दिया गया शब्द है। जिस पर आज के दलित विमर्शकार गाहे–बेगाहे अंगुली उठाते रहते हैं। वस्तुतः यह शब्द दलितों की वेदना और संघर्ष को द्योतित कम, क्षतिपूर्ति करने वाला ज्यादा लगता है। इसके इतर अदम अपनी नज़्म का नाम 'चमारों की गली' रखते हैं जिसमें आया 'चमार' शब्द दलितों की तल्खी तेवर और प्रतिरोध को मुखरता से व्यक्त करता है। इसकी अभिव्यंजना ज्यादा मारक है और उनके हालात बतलाने के लिये यह शब्द अधिक संगत है।

दोनों कविताओं के कथ्य दलितों के प्रति हिंसा शुरू होते हैं, उनके हताहत जीवन की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं। किस प्रकार समाज उनको निकृष्ट मानता आया है। उन पर सब प्रकार के अत्याचार को अपना जायज अधिकार मानते हुये जब और जहाँ चाहे उनकी जघन्य हत्याएं और महिलाओं का यौन घर्षण कर सकता है–

''ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन–माताएं अपने भ्रूणों के जनकों को
खो चुकी हो एक पैशाचिक दुष्कांड में
ऐसा तो कभी नहीं हुआ था''[5]

xx xx xx

''होनी से अनभिज्ञ कृष्णा बेखबर राहों में थी
मोड़ पर घूमी तो देखा अजनबी बाहों में थी
दिन तो सरयू की कछारों में था कब का ढल गया
वासना की आग में कौमार्य इसका जल गया।''[6]

दलितों की इस दुखद व्यथा को और गाढ़ा करता है सत्ता, सामन्त और पुलिस का गठजोड़। इन तीनों का गठबन्धन इनके जीवन को नरकीय बना देता है और घुटनभरी यातना

सहने को अभिशप्त कर देता है। इसके कारण उनकी प्रतिकार और प्रतिशोध की सारी चेतना निष्प्रभावी हो जाती है।

''निकला मंगल झोपड़ी का पल्ला थोड़ा खोलकर
इक सिपाही ने तभी लाठी चलायी तोलकर''

xx xx xx

''ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
महज दस मील दूर पड़ता हो थाना
और दरोगा जी तक बार–बार
खबरें पहुंचा दी गई हों संभावित दुर्घटनाओं की''[8]

दोनों कविताओं में एक घटना केन्द्रीय है, वह है अग्निकांड। जमींदार वर्ग को तो मानों दलितों की बस्ती जला देने में ही संतोष आता है। हरिजन गाथा में तो 13 दिलत इस आग में स्वाहा हो गये। वे इसे दलित के बच्चों को मज़ा चखाना कहते हैं। उनको आग में होम करने पर उतारू रहते हैं वे अग्नि के ताप में दलितों के वजूद को गलाना चाहते हैं, भस्मीभूत कर देना चाहते हैं–

''ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं–
तेरह के तेरह अभागे–
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोंक दिए गये हों
प्रचंड अग्नि की विकराल लपटों में''[9]

xx xx xx

''और फिर प्रतिशोध की ऑधी वहाँ चलने लगी
बेसहारा निर्बलों की झोपड़ी जलने लगी''[10]

ऐसा नहीं है कि ये कविताएं दलितों की पस्त हिम्मती, हिरास खौफ़ और बेबसी का ही वर्णन करती है, वरन् इन स्थितियों से लड़ने, संघर्ष करने की बात भी दर्ज़ करती हैं। उनके वेदना

मिश्रित क्रोध, आक्रोश व बदले की भावना से दहक रही आग को रेखित करती हुयी आशा और परिवर्तनकामी सम्भावना का संचरण भी करती हैं–

''बढ़के मंगल ने कहा काका तू कैसे मौन है
पूछ तो बेटी से आखिर वो दरिन्दा कौन है
हो कई की संघर्ष से हम पांव मोड़ेंगे नहीं
कच्चा खा जायेंगे, जिन्दा उसको छोड़ेंगे नहीं''[11]

xx xx xx

''दिल ने कहा–दलित मांओं के
सब बच्चे अब बागी होंगे
अग्निपुत्र होंगे वे, अंतिम
विप्लव में सहभागी होंगे''[12]

हरिजन गाथा इसी अंतिम विप्लव अर्थात सम्पूर्ण क्रान्ति तथा अस्मिता वादी राजनीति के उभार की उम्मीद का सुखद स्वप्न लिए परणति तक पहुँचती है। वहीं अदम की 'चमारों की गली' की रचना के समय तक सम्पूर्ण क्रान्ति का शीरज़ा बिखर चुका था, उससे उपजी अस्मितावादी राजनीति के अन्तर्विरोध भी सामने आ चुके थे। अतः अदम की कविता का अन्त सुखद नहीं है। समाज में स्थितियाँ ज्यो की त्यों न केवल विद्यमान है बल्कि और भी मारक तथा महीन हो गयी हैं। वहाँ आज भी कई मंगल लंगोटी के लिए तरस रहे हैं, कृष्णा जिस्म बेच रही है, गाँवों में पंचालियों की रोज नथ उतारी जा रही है। कुल मिलाकर दृश्य बहुत भयानक हो चुका है। इस तरह 'चमारों की गली' 'हरिजन गाथा' की प्रतिलोमी कविता है या एक अर्थ में कहा जाय कि यह हरिजन गाथा की अगली कड़ी एवं पूरक कविता है।

संदर्भ :

1. राजेन्द्र यादव, पीड़ा के दावेदार, मैं हंस नहीं पढ़ता, समायोजन, कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2005, पृ0सं0 149
2. वही
3. मैनेजर पाण्डेय, अदम गोंडवी की कविता, कल के लिये, सं0 डॉ0 जय नारायण, अंक 75–77, (दिसम्बर 2011–जून 2012) बहराइच, उ0प्र0, पृ0सं0 7
4. अदम गोंडवी, धरती की सतह पर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2013, पृ0सं0 73
5. नागार्जुन, हरिजन गाथा, नागार्जुन चयनित कतिवाएं, सं0 मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत सं0 2014, पृ0सं0 73
6. अदम गोंडवी, चमारों की गली, धरती की सतह पर, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2013, पृ0सं0 85
7. वही, पृ0सं0 88
8. नागार्जुन, हरिजन गाथा, नागार्जुन चयनित कविताएं, सं0 मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत सं0 2014, पृ0सं0 13
9. वही
10. अदम गोंडवी, चमारों की गली, धरती की सतह पर, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, सं0 2013, पृ0सं0 88
11. वही, पृ0सं0 86
12. नागार्जुन, हरिजन गाथा, नागार्जुन चयनित कविताएं, सं0 मैनेजर पाण्डेय, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, सं0 2014, पृ0सं0 79